

हिंदी काव्य में प्रगतिवाद

लेखक

विजयशंकर मल्ल, एम० ए०

प्रकाशक

सरस्वती - मंदिर

यन्त्रालय

प्रथम बार
अक्टूबर १६४७
मृ. य. २॥५

वक्तव्य

प्रस्तुत पुस्तक का उद्देश्य आधुनिक हिन्दी-काव्य की नवीनतम प्रवृत्ति 'प्रगतिवाद' का सुसोध विवेचन है। मैंने यह प्रयत्न किया है कि इसमें प्रगतिवाद की साहित्यगत आशयसूचना का उल्लेख, उसके सैद्धांतिक और व्यावहारिक पक्ष का निरूपण तथा उसकी मज्जमद् प्रवृत्तियों का निर्यंश स्पष्ट रूप में हो पाय।

पुस्तक मग १९४५ के अप्रैल में तैयार हो गई थी। फिर विचार हुआ कि इसका और विस्तार कर दिया जाय, पर कई कारणों से यह कार्य संभव न था और प्रिलम्ब होने लगा इसलिए वहाँ तहाँ बहुत बड़े परिवर्तन के साथ, प्रायः उसी रूप में, 'हिन्दी-काव्य में प्रगतिवाद' प्रकाशित हो रहा है।

यह कहना कि अद्वैत गुरुवर ५० विभक्त्यायप्रसादजी मित्र का कृपा में ही यह पुस्तक इस रूप में उपस्थित की जा रही है, तथ्य का कदा मात्र है। अद्वैत गुरुवर-द्वय ५० केशवप्रसादजी मिश्र और ५० नन्दलालरेनी जानपेयी ने एक-एक बार इसकी पाहुल्लिपि लेखकर मुझे प्रोत्साहित किया है। यद्यपि शत्रु द्वारा गुरुवरों के मृत्यु और अनुभव का उल्लेख करना पड़ित है तथापि प्रचलित रीति के अनुसार उपर्युक्त महानुभावों के प्रति मैं हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। इस पुस्तक में नित लेखकों की रचनाओं में किसी प्रकार के चरित्र दिष्टि गण हैं उन सब का मैं क्षणी हूँ। अतः

(२)

मैं म उन सभी मित्रों का आभार स्वीकार करता हूँ जिनकी प्रेरणा से इस पुस्तक को प्रकाशित कराने में शीघ्रता करनी पड़ी। प्रियर श्री नामर सिंह ने भी पुस्तक का नामानुक्रम तैयार करके मेरी सहायता की है।

यदि यह पुस्तक जिज्ञासुओं को प्रगतिवादी काव्य की गति विधि समझने में कुछ भी सहायक हुई तो मैं अपना श्रम सार्थक समझूँगा।

हिन्दू विश्वविद्यालय
काशी

अगस्त १९३३

विनयशक्त मल्ल

विषय-सूची

प्रकरण



पृष्ठ

१—पूर्वपीठिका

३

काव्य और एक आधुनिक हिन्दी-काव्य के विभिन्न युग और तत्कालीन परिस्थितियों, हिन्दीकाव्य की राष्ट्रीय धारा, गांधीवाद, मानववाद प्रगतिवाद ।

२—प्रगतिवाद का इतिहास

३८

हिन्दी में प्रगतिवाद का आन्दोलन, प्रगतिशील एकक सघ की स्थापना प्रथम सभापति के विचार, प्रगतिवादी काव्य का सूत्रपातकर्ता आधुनिक हिन्दी काव्य, आधुनिक अंगरेजी काव्य ।

३—काव्य मित्रात

४७

काव्य—प्रातिदिव्यिक सत्ता काव्य का उद्भव और विकास सामाजिक सौमनस्य काव्य का प्रधान लक्ष्य, दो प्रकार के काव्य काव्य का निर्माणात्मक अवयव काव्य पत्र वृत्तों जयमल दा शर्मा, मुल्की का साहित्यिक आदर्श काव्य का उद्देश्य काव्य और प्रचार भावभूमि और कर्मभूमि, 'साधारणीकरण' और 'सामूहिक भाव' मानव बर्तन आलोचनाप्रणाली ठण्डी समझ, छाहवेन के ममीणा विद्वान ।

प्रकरण

पृष्ठ

४—प्रगतिवादी काव्य के विषय

८६

प्रगतिवाद के दो अर्थ प्रगतिवाद की परंपरा रचना के विषय, प्रगतिवाद की प्रमुख प्रवृत्तियों।

५—कलापन

११९

प्रस्तावना, तीन प्रमुख शैलियों सरलता और वीभावन व्यंग—उसके दो प्रकार अशोभित तर्जिन अप्रस्तुत छंद।

६—ग्रन्थसार

१३७

उपक्रम शारदा और सामयिक मनाभाव, कवि की युगा-
रूपता समय की मौल्य और गतिमती सागठिकता साहित्य-
क्षेत्र में 'अमरिमात्रा' कवि और राजनाति साहित्यक्षेत्र
में भरभरवादिता रत्न निरीक्षण की आय परता, कतिपय
प्रगतिवादी कवि।

पूर्वपीठिका

काव्य लोक की रसु है और उसका कत्ता कवि सवेदनशील सामाजिक प्राणी। लाक व बान सारित हानेवाली भावधारा एवं विचारतरंगों के आघात से उसका हृत्त ग्री जब क्षपित हो उठती है तब काव्य की झकार उत्पन्न होती है, जिसकी रमणायता में मग्न होकर सदृश्य पाठक विश्वात्मा को मंगल-साधना में याग देता है। कहने का तात्पर्य यह कि काव्य में सामाजिक जीवन के दृश्य एवं मनाहृतियों का प्रतिबिम्ब होता है और उस कविता का अध्ययन करनेवाले पाठक व हृदय पर निरूपित निम्नो एवं व्यक्तित्व भावों का प्रतिबिम्ब पड़ता है। अर्थात् काव्य प्रातिबिम्बिक सत्ता है।

जब काव्य और सांस्कृतिक जीवन का संबंध इतना घनिष्ठ है तब यह स्वाभाविक है कि किसी बाल विदेश की काव्यधारा में उस युग की चिन्ता, आकांक्षा और मने हृतियों की पूरी छाप हो। मानव-समान

ती है। प्रगति और स्वरूप के विचार से ठम चार सदां म
प्रजित किया जा सकता है—भारतेंदु युग, द्विवेदी-युग, आयागाद
य और वर्तमान युग।

भारतेंदु युग

जिस समय में आधुनिक हिन्दी-कविता का प्रारम्भ हुआ है वह
य सयद, विचार परिचय और विदेशी सत्ता के निरन्तर बढ़त हुए
य और उत्पादन का युग है। यद्यपि प्रायः सौ साल पहले ही
गरेज व्यापारियों ने अपने प्रतिद्वंद्वियों का परास्त कर अपने पैर
भारत में जमा लिए थे तथापि सन् १८५७ के विद्रोह के पश्चात्
परिचित रूप में विदेशी सत्ता की स्थापना यहाँ हुई। सन् ५७ की
ति ने भारतीयों के जीवन में डबल पुचल मचा दी थी और
नता आश्चर्यजनक हा तत्कालीन परिस्थितियों का देखा रहा था।
जनीति के जीवन आमूल परिवर्तित हो गया। एक ओर घोषूराय
य सरकारी पेंशन दे देने के कारण और बढ़ा रहे थे दूसरी
ओर लम्बन के नयाव बाजिदाली शाह राज्य ग कर कलकत्ता में
ठे बैठे शासरी कर के सिल्लो दे रहे थे। कंपनी के राज्य
अतः हुआ और महाराना बिकटारिया भारत की शासिका हुई
भारत का शासन श्व इंग्लैंड की पालमेंट के हाथ में गया। राज के प
नेयणा ने लागू का विहित हुआ कि हमारे घम पर अरक
गापात न होगा। सरकारी नौकरियों का द्वार सब के लिए खुला है।
इन सब बातों में भारतीयों के हृदय में नयेन आशा का संचार
हुआ और उठे थे हा शांति मिली। यों की मारकाट और अशांति
के पश्चात् लागू का यह सामान्य स्थिति अत्यंत सुखद प्रतीत हुई।
उस समय हमारे कविों ने भी राजप्रशंसितियों गाई। यद्यपि वे
आदि की व्यदरणा का मूल उद्देश्य देश के भव्य भागों में

दरती है । प्रकृति और स्वप्न के विशार में उसे बार-बार लड़ाई में विमानित किया जा सकता है—भारतेंदु युग, द्विवेदी-युग, छायावाद युग और वर्तमान युग ।

भारतेंदु युग

विदेशी माल की मांग और कच्चा माल की निर्यात की सुविधाजनक बनाया था परन्तु व्यापार लागों का यह प्रतीत हुआ कि सरकारी हमारी सुख सुविधाओं की दृष्टि में नवीन व्यवस्थाएँ कर रहे हैं, इस विचार में तत्कालीन कर्मियों ने अपनी रचनाओं के द्वारा जाता है इस में और गहन के प्रति घृणितता प्रकाश में पड़ गई।

परन्तु शीघ्र ही लोगों का विदित हो गया कि विदेशी माल के दश का आर्थिक शापण कर रहे हैं। तब कायम जगत् में कर प्रशस्ति के साथ साथ देशभक्ति का स्वर भी ऊँचा और गूँघरा गया जिसके अंतर्गत दश की तत्कालीन दशा का विवरण मिलने लगा। भारत की अतुल सर्पति जलभाग में बहकर का जा रही है इसका आभास भारतेंदु की इन प्रसिद्ध पंक्तियों में मिलता है—

अंगरेज राज सुखसाज सजे सब भारी,
ऐ घम विदेस कलि जात यह अति खारी।

इस काल के पहले इंग्लैंड में औद्योगिक क्रांति हो चुकी थी। औद्योगिक उन्नति में वहाँ का पूँजी बहुत बढ़ गई थी अतएव उस पूँजी को लगान के लिए नए बाजार का आवश्यकता हुई। भारत कायम था ही यहाँ विदेशी पूँजी अधिकाधिक मात्रा में लगाई गई। आर्थिक शापण का चक्र विनाश गतिमान हुआ। सन् १८६८ में ७८ के बीच देश में कई अनाल भी पड़े। इस प्रकार आर्थिक अवस्था क्रमशः शोचनीय होती गई। कई स्थानों पर किसानों के विद्रोह भी हुए। नए नए करों के बोझ में जनता दबती जा रही थी। घीरे घीरे विदेशी शासन पर लोगों का निरगमन कम होने लगा। इधर सन् १८८५ ई० में कांग्रेस की स्थापना हुई जिसने देश में नवीन चेतना का प्रसार किया। इन सब आर्थिक और राजनीतिक कारणों से जनता के कष्ट नियंत्रित बढ़ने लगे।

गणित किया। इन्होंने पुनः प्रदत्त म हिंदू काव्य में राष्ट्र-पादिता का स्वर उठाया हुआ। निम्न ही यह नि- दान आनन्दमय गा जब भारतेन्दु ने हिंदू काव्य में मन्त्रमया परम्परा, स्थापना भारतमाता की मूर्ति अधिष्ठित कर अपनी अज्ञा भक्ति और प्रेम के भाव पुष्प उत्तम पुष्पान्तर चरणों पर आपन दिये।

देशमर्षि की भावना भी वह रूपा में व्यक्त हुई। ऐसा कि कह आये हैं, इस काल के कवियों ने राष्ट्रप्रशंसा में न केवल रचनाएँ कीं। यह राष्ट्रप्रशंसा भी उस समय देशमर्षि का एक नया समझा जाती थी। राज-व्यवस्था देश की मुक्त समृद्धि का हनु और राजा जनता के आनन्द मगल में तत्पर आदर्श व्यक्ति के रूप में माया था। इस काल की कई रचनाओं में राजा विकटारिया के बचनों का स्मरण दिखाकर शासकों के मन में राष्ट्रप्रियता जागरित कर देश की आर्थिक दुर्दशा सुधारने का प्रार्थना का गढ़। पर इस प्रकार के प्रार्थनाएँ कुछ प्रेम प्रभावित हुई। अब कवियों ने अपना रचनाओं में देश की आर्थिक और सामाजिक दुर्दशा से उत्पन्न श्रम की व्यञ्जना करनी आरम्भ की। मँहगी और टक्स के कारण रूत हुए देश का वर्णन हुआ। विदेशी वस्तुओं के विराध और स्वदेशी वस्तुओं के व्यवहार में निहित कटवाण और सभी प्रतिष्ठा का आभाव दिया गया—'इस देश का नाम स्वदेशी रूप' पढ़िन।' देश का तत्कालीन दुर्दशा का वर्णन कर भगवान में भारत के उद्धार का प्रार्थना का गढ़। भारत के गौरवपूर्ण जताते का स्मरण दिखाकर वर्तमान के लिए नवान स्फूर्ति और प्रेरणा प्राप्त करने का प्रयत्न हुआ।

इधर भारतीयों में आत्ममान की भावना धीरे धीरे बढ़ती जा रहा था। जब 'काल' 'छेनिका' न गारा' के साथ साथ विदेशों में जाकर विजय प्राप्त की तब इस काल के कवियों ने इस का अनुभव

किया। म्रिय में उनक विजय प्राप्त करने पर कहा गया—‘ऊँचे भय आर्य मोठ क बार।’

ज्यों ज्यों विदेशी सत्ता की आर्थक शोषण और निदयता का नीति स्पष्ट होती गई त्यों त्यों भारतेंदु-युग की रचनाओं में देशभक्ति का स्वर भी उग्र होता गया। “र की दया पर निर्भर रहना छाड़कर आत्म निर्भरता और आत्मत्याग की भावना का आभास देनेवाला कई रचनाएँ बालमुकुंद गुप्त आदि ने लिखी हैं। काउंसिल स्वदेशी आन्दोलन के पहले ही देश की सही स्थिति परखकर स्वदेशी वस्तुओं के व्यवहार और आत्मनिर्भरता द्वारा देश की अघनति क उपचार का निर्दशन गुप्तजी की इन पंक्तियों में वर्तमान है, यह ध्यान देने का बात है—

“अपना बोधा आप ही जायें,
अपना कपड़ा आप बनायें।
माल विदेशी दूर भगायें,
अपना खरजा आप बढायें।
पढ़ें सदा अपना व्यापार
बारी दिस हो मौज बढार।”

आर्थिक स्वतंत्रता की भावना की दृष्टि में भी इस प्रकार की रचनाएँ ध्यान देने योग्य हैं। किसानों की दान दशा का आभास भारतेंदु-काल की अनेक रचनाओं में मिलता है। कहाँ कहाँ तो उनक कष्टों का विशद उगुन भी दिखाने दता है।

● उदाहरण क लिय कुछ पंक्तियाँ दनि—

“जिनके कारण सब मुम पायें, जिनका बाधा सब जन लायें,
हाय हाय उनक बालक नित, भूगा क मारे छिडायें।
बाल सब की सी पुकारें, उन भयानक चढती हैं
परता का नागों परतें जिनमें लावा सा जवता है।

भक्त व शीघ्र प्रीतिवित्त भक्तिभावना का लहर मो इस युग में
 ओष रंगभण्ड हुआ । इनमें आभोग्येन्द्र और भक्त हृदय के सरल
 उद्गारों की अच्छी स्पर्शना मिलती है । वृष्णमन्त्र शास्त्र की अनु-
 रक्तकारी प्रणमयी मधुर रचनाओं का परिमाण भी प्रचुर है । कवि-गण
 धार्मिक आदर्शों की आर धी धाव बहुत आवृष्ट हुई । इन्होंने अनेक
 अधविधाओं और रुढ़ियाँ रा विरोध किया । इनकी धार्मिक नीति की
 मयमें बड़ी विनयता है उदार मनःट्टि, भ्रातृ भावना और भय घमा
 बलविधो के प्रति सहजशीलता । सामाजिक सुधारों की ओर भी ये
 गगन और कवि सचेत दिव्यार्थ देते हैं । इस समय हिंदू समाज में
 तीन दल थे । एक दल तो अंगरेजी शिक्षा प्राप्त उन अपरिपक्वबुद्धि
 नययुवकों का था जो विदेशी भावनाओं से एकदम आपात व और
 सभी प्राचीन भारतीय धर्तुओं का द्वेष समझते थे । दूसरा दल कट्टर
 पथी और रुढ़ियाँ में निपट रहनेवालों का था । इन दोनों के बीच में
 सुधारवादी समुदाय था जो समय की गति के अनुरूप कुछ दूर तर-

तभा सुख मैत्रियों में व कृति कितानी करते हैं ।
 नग तन बालक नरनारी पिता पाना करते हैं ।
 अहा बिचारे दुख न मार निसिदिन पथ-पथ मरें किमान ।
 पथ अनाज उत्पन्न हाय तब मय उन्वा लें गौर लगान ।'

—बालमुकुंद गुप्त

X X X X X

दीन कृपकर्म औरतु न्या-योग दूरसावहा
 निनके तन पर स्वरु घस कर्तु लमियत नाहा ।
 मिहनत करत अधिक पर अन कर्तु कर्म पावत
 न निज भुपवल हल चलाय के गगत जिवावत ।'

—प्रेमघन

सामाजिक रीति-नितियों का परेष्कार कर नई युग के अनुकूल ढालना चाहता था। भारतेंदु और उनके अधिकांश सहयोगी इसी दल के पक्षगत आने लगे। उनकी रचनाओं में एक ओर तो विदेशी सम्प्रदायों के नवयुगको पर ध्वज किया जाता था और दूसरी ओर रूढ़िवादियों का उपहास भी। उहाँ एक जगह इस काव्य की कविताओं में 'गंगेजी गंगा प्राम' श्रियों की अनोखी चालचाल पर व्यंग्य है। उहाँ दूसरी ओर भारतेंदु पेश के मोनर श्री शिवा का सुपयस्विन प्रचार भी चाहते हैं और नारियों का अपने प्राचीन गौरव पर अधिग्रहण कर 'गीलानाज शिवादि' में पूरा शक्तिमती मीना और अंगुष्ठा आदि के रूप में प्रेक्षना चाहते हैं। छत्राष्ट के विरोध का आभास भी इनकी रचनाओं में मिलता है। नागरी की धठना का प्रतिपादन, हिंदुओं की उत्पत्ति, देश की प्रगति—इन सब विषयों पर इस काव्य में अनेक जगहों पर छद्म। प्रतापनारायण मिश्र का निम्नलिखित पद्यों में भारतेंदु दल की भावधारण में समाविष्ट गया विचार प्रधान भाव गहराई का मूल समन्वित रूप में व्यक्त है—

बहदुर जो सौंखी निज करपान,
तो सब मिलि भारत सतान।
जपो निरनर वक जवान,
हिंदी हिंदू हिंदुस्तान।
तबहि मुधरिहैं जम मिदान,
तबहि मलो करिहैं मागधान।
जब निसिदिन रहिहैं बहदुरपान,
हिंदी हिंदू हिंदुस्तान।

इस प्रकार हम जानते हैं कि इन कवियों के हृदय का सामान्य आकर्षण में पूरा समावेश है। काव्य और रचना का मूल्य स्थापित कर आधुनिक हिंदी कविता के विकास में इन्होंने अत्यंत

महत्त्वपूर्ण योग दिया। पर इसमें यह न समझ लेना चाहिए कि इस काल में केवल इस प्रकार का सामयिक कविताएँ ही हवा में रहें। प्रेम और भक्ति की मार्मिक रचना भारतेंदु युग के काव्य साहित्य में प्रचुर परिमाण में मिलती है। यह सर होन हुए भी यह मानना होगा कि यह सफाति काल ऐसी रचनाओं के विपरीत अनुकूल न था जिनका अधिक स्थायी महत्त्व होता। इस काल की रचनाओं में विचारों की अति अधिक और कवि का सतमय हृदय कम मिलता है। उनके राजनीतिक और अन्य सुधारवादी विचार जीवन के अविच्छिन्न अंग बनकर उनसे पूरी तरह घुले मिले न थे अतएव रचनाओं में व्यक्तित्व उनके विचार पूर्ण भावमय बनकर प्रभाव का तात्पर्य नही रहता था। मरु पृष्ठिए ता सफाति काल ऐसी भावमय साहित्य रचना के विपरीत अनुकूल प्राय होता भी नहीं। इस विषय में टी० ए० इलियट का यह कथन विचारणीय है कि सफाति के काल में कवि प्रत्यक्ष और परावर्तित रूप से तत्कालीन विचारधाराओं के प्रति अतिरिक्तवादी हो जाता है।^{१५}

जब तक काव्य में पूर्ण भावप्रवणता नही आता और मानक अनुभूति का उपयुक्त व्यञ्जना नही होता तब तक उसका वास्तविक स्वरूप सामने नहीं आता। पर इस बात में हम युग की रचनाओं का महत्त्व कम नही होता। इस काल के कवियों का समय बड़ा विचित्रता यह है कि न तो वे एक सँकर पथ से निराला कर देता

"A period of revolution is not favourable to art, since it puts pressure upon the poet, both direct and indirect, to make him overconscious of his beliefs as held

The use of poetry and the use of criticism,

उन जाकजाउन के साथ ला मिलाया, उसमें नतीन भाग और चिनारा का समिवेग किया और देशमति के रंग में ठने रगा ।

द्विवेदी युग

भारतेंदु युग में काव्य और समाज का जो सगंध स्थापित हुआ वह निर्यप्रति बढ़ता गया । काव्य जाकजाउन के समीप आता गया । शिक्षाप्रसार और गणनीय जगति के कारण लोगों में मानमाया के प्रति ना अनुसंग बढ़ा । ठहर पुरानी परिपाटी के अनुसार चली आती जनमानस की शक्ति भी कुछ मद पड़ी लगी थी । जनता को रास्तविक लाकमाया में दूर जा पड़ने के कारण उसमें पहुँचे पैसा हृदय माहिता न रह गई । इधर, लोगों को यह बात भी लटकने लगी कि काव्य की भाषा कुछ और है और गद्य की कुछ और है । कारणों ने शिष्ट-समुदाय में प्रचलित हिंदी के मान्य स्वरूप लड़वाया का प्रतिष्ठा पथ के क्षेत्र में करने के लिए हमारे अधिकांश कवि प्रवृत्त हुए । इसी समय 'सरस्वती' (सन १९०० ई०) का जन्म हुआ, जिसने कुछ ही दिनों बाद ५० महावीरप्रसाद द्विवेदी के संपादकत्व में युगप्रवृत्तियों के अनुकूल साहित्य और भाषा संचय विकास में बहुत योग दिया । इसी समय में द्विवेदी युग का आरंभ समझना चाहिए । इस काल के सबसे महत्वपूर्ण काव्य है 'गर्दी बोध' का काव्य के क्षेत्र में प्रतिष्ठित करना और भाषा की अन्यत्रस्था को दूर कर व्याकरणमय व्यवस्थित भाषा का स्वरूपनिधारण ।

भारतेंदु युग की विदेशी शासन की स्थापना ने सामाजिक जीवन में जो विश्रुतलताएँ और असंगतियाँ मादुमूव हुई थीं, विकल्पित हान, जा रही थीं । पर द्विवेदी युग में कुछ ऐसी राजनीति घटनाएँ हुईं जिनके कारण भारतीयों में आत्मविश्वास और आत्मनिर्भरता का जगरना पुष्ट हुई । अब तक यूरोपीय देशों की शक्ति और

समृद्धि का आतक एशियावासियों पर छाया रहता था। किंतु सन् १९०४ में रूस जापान युद्ध में जापानियों की विजय न एशियावासियों का सिर ऊँचा किया। पाश्चात्यो का आतक कम हुआ और आत्मगौरव का भाव लोगों के हृदय में जागरित हुआ। इधर वग विच्छेद के प्रश्न पर स्वदेशी आंदोलन का लहर उठी। जनता में विदेशी वस्तुओं के नाहक और स्वदेशी वस्तुओं का व्यवहार करने की प्रवृत्ति अप्रत्याशित विशेष रूप में दिखाई देने लगी। इस आंदोलन से बहुत से लोग मातृभाषा हिंदी का आरंभ भी आकृष्ट हुए। 'वदेमातरम्' का पवित्र गान देश के काने काने में गूँजन लगा। काग्रेस में भी कुछ महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए। उसमें गरमदल का प्रभुत्व हुआ जो कमप्रवर्तक (रचनात्मक) कार्यक्रम में विश्वास रखता था और यह भली भाँति समझता और समझाता था कि स्वाधीनता दूसरों के दान से नहीं बरन् अपने कठिन उद्योगों से प्राप्त होता है, जिसके लिए आत्मनिभरता का भाव आवश्यक है।

राष्ट्रीय आंदोलनों से प्रभावित होने के कारण द्विवेदी युग के कवियों में देशभक्ति का जो स्वरूप व्यक्तित्व है वह पहले की अपेक्षा कुछ व्यापक है। केवल हिंदू जाति की ही आरंभ अपनई दृष्टि परिमित न रखकर इस काल के कवियों ने व्यापक राष्ट्रीयता की ओर ही अधिक दृष्टि रखी जिसकी गाँव भारतेंदु द्वारा पड़ी थी।

इस काव्य का हम अतीत की ओर ही अधिक आकृष्ट न रहकर देश और समाज की तत्कालीन दशा का ध्यान रखते हुए उत्साह और आत्मनिष्ठा का भावना का संचार करते हुए पाते हैं। * मातृभूमि में

* नहीं रहे अधिकार तुम्हारे, न रहे, पर वे मिटे नहीं।

जमसिद्ध अधिकार किसी के मिट सकते हैं भला कहीं ?

भूमि यही है, जहाँ निरंतर सभी सिद्धियाँ सिद्ध रहती हैं।

कर, इसा घरती की धूल में खेल्कर यहाँ के अप्रजल्दनायु
 पित, सभी जानिबो और धर्मों व अनुयायी मारतगारी है अतएव
 व व च भ्रातृव का भावना का प्रसार होना चाहिए—इस प्रकार
 रकता का आग्रह साहित्य के द्वारा भी होने लगा। पर इस समय
 यिता व उम्र भाषा की व्यवस्था तो दूर, दशप्रम की बहुत स्पष्ट
 ना भी सुगम न थी। प्रेस के कानूनों और सेंसर की गूढ़ दृष्टि
 रूप रचनाओं पर बराबर पड़ा करती थी। द्विवेदी युग का सबसे
 एक लोकप्रिय रचना है गुप्त जी का 'भारत भारती'। यह संभवतः
 १९ में प्रकाशित हुई। इसका कतिपय उदार भावनाएँ आज
 में बहुत पठ मादम पड़ती हैं पर छपने के पहले कवि को राज
 में ठगम बहुत कुछ परिवर्तन करना पड़ा था। † यहाँ तक कि
 'देश राज्य' शीर्षक प्रगल्भात्मक कविता गुप्त जी का अनिच्छापूर्वक
 में न जादनी पड़ी थी।

इस काल का राष्ट्रीय कविताओं में मार्मिकता का दृष्टि में दा
 रूप परिलक्षित हुए। भारतभूमि के प्रति सबल विचारामक
 म अपना अनुराग न दिलाकर करियान मानुभूमि के कद
 मर्षी विषय प्रस्तुत किए। उन्होंने मानुभूमि की परम सौंदर्यमयी
 कृत्रिम दरबारली का उल्लेख करते हुए भारतमाता के प्रति भेदा
 का इस भावामक सत्ता का प्रसार दिया जिसमें देश के प्रति

-
- "गल गानना है कि तुझा धा आग्रवाउ रूपन यहाँ।
 बाग क्या कि फिर छिन्नभिन्न यह पराधानता पाए न हो।
 भाषा का संदेश सुना, इ भारत सभी हलाक न हो।
 —मैधिनीश्वर गुप्त

† 'दाम्पत्य गुप्त जी की भारतभारती'—साहित्य मंश,
 साल १९८१।

सखी ममता व दशन हात है। गहरी रचनाओं में मानुषीय की परम मंगलमयी मूर्ति व दर्शन व जहाँ हृदय में ममता जगती है, उसकी विशालता और उच्चता का स्वरूप जहाँ गौरव का अंश भर होता है, वहाँ वास्तविक जगत् में उसे दीन हाथ पराधान बनकर दुःख, ग्लानि और भाव भी उपन करते हैं।

राज्य की कृषि और व्यवसाय सम्प्रदाय नीति व राज्य दश का आर्थिक अरस्था घावनाय होती जा रहा था। नए क्रों तथा साहकारों और जमादारों के शासन में किसानों का स्वयंसेवक बनना ही गया। पत्रों की शक्ति, मूल्यवादी बंधन और कड़ककाती धूप का ध्यान न रखकर व्यक्तिगत में सलग्न सनतप्रधानशक्ति वस्तुनिष्ठ किसानों का अन्न मिलना भी कठिन हो रहा है—इस प्रकार के अधिक विवरण द्वितीय युग का कविताओं में भरे पड़े हैं।

सामाजिक सुधारों की भी इस समय प्रगति होती ही जा रहा था। शिक्षा समुदाय में नवीन विचारों का प्रवेश हो रहा था और समाजसुधार की ओर लोगों का ध्यान अधिक आकृष्ट होने लगा था। सामाजिक सुधारों का लेखन इतिहासमय रचनाएँ तो इस युग में प्रचुर परिमाण में हुईं।

इस समय पश्चिमी शिक्षा व प्रभाव में लोगों में तर्क और सशय उत्पन्न करनेवाली बुद्धिवादिता का जन्म राज्य की दृष्टि में भी महत्त्वपूर्ण है। इस प्रकार की युगवृत्ति का ही फल है कि प० अयोध्या सिंह उपाध्याय के 'प्रियप्रवास' की राधा लाकमेविका के रूप में हमारे सम्मुख आती है। इतना ही नहीं, तर्क और सशय व निराकरण के लिए धीरुष्ण व गायदर्शन को उँगली पर उठा देने वाली पीरा स्थित कथा को उपाध्याय जी वर्तमान पाठक व सामने इस प्रकार उपस्थित करत हैं—

लख अपार-प्रसार-गिरीन्द्र में,
जनधराधिप के प्रिय पुत्र का।

सकल लोग लगे कहने, ऐसे
रख लिया हँगली पर दयाम ने ।

गुप्त नी ने तो अपने 'साकेत' में सत्याग्रह, चरखा और विधान
आंदोलन का भी रंग ला दिया है ।

इस प्रकार द्विवेदी युग की रचनाओं में विविध युग प्रवृत्तियों
की पूरी छाप दिखाई देती है । पर मार्मिकता की दृष्टि से, अपने में लीन
कर लेनेवाली रचनाएँ कम ही हुई । इसके कई कारण हैं । एक तो
भाषा का मौजदार उपमें भावसंचार की पूरी समता लाने में ही विशिष्ट
प्रयत्न लग रहे । दूसरे, व्याकरण के कठर अंकुश और स्थूल
नैतिकता व विषयप्रण के कारण काव्य में कल्पना अच्छी तरह बिल
न सका । इस समय की अधिकांश कविताएँ विषयप्रधान और वर्णना
त्मक ही दिखाई देती हैं । जो थोड़ी बहुत आरपानक कविताएँ हैं वे
प्रायः पौराणिक हैं, और जो कारपनिक हैं उनमें भी ममत्पर्षी कम हैं ।

छायावाद युग

इस प्रकार की रचनाओं ने कवियों की मानस तृप्ति न दी सकी ।
विषदा युग के अंतिम काल में ही कुछ कवियों ने अपनी रचनाओं
में थोड़ी स्वच्छन्द मनोवृत्ति का परिचय देना प्रारंभ कर दिया था ।
उन्में अण्णाष्टक, मनोरम-कल्पना और भाव प्रवणता का अधिक
परिचय गायक मिष्टा, पर सन् १९१४-१८ के महायुद्ध के पश्चात्
हिन्दी कविता नवन मार्ग पर स्वच्छन्द गति से बढ़ी और उसका बहुत
ही रमणीय विकास हुआ ।

ॐ साकेत का प्रगल्भ-द्विवेदी युग में ही हो गया था और उसके
कई मार्ग सरस्वती में प्रकाशित हो चुके थे, पर पूरी पुष्पक बाद में
प्रकाशित हुई ।

उन मनोवृत्तियों का अच्छा उद्घाटन हुआ है जिनमें स
स्थिति पर काफी प्रकाश पड़ता है।

छायावादी कवियों के साथ एक ऐसा दल भी चल रहा
भारतेंदु द्वारा काव्य में प्रवर्तित राष्ट्रीय धारा का बराबर
करता गया। इन कवियों में से कुछ तो राजनीति में सक्रिय
होते रहे। मालनलाल चतुर्वेदी, गाल्ट्स्मैन रामा 'नवीन'
मुभद्राकुमारी चौहान ऐसे ही कवि हैं। इन्होंने दशभक्ति पूर्ण
मार्मिक रचनाएँ की हैं। इसका एक कारण यह भी है कि रा
के भाव और विचार इनके जीवन के अविच्छिन्न अंग बनकर
में उद्भूत हुए हैं। चतुर्वेदी जी की अधिकांश रचनाएँ के
आवरण में सामने आती हैं। 'सौंसी की रानी' की रचयित्री
जी की कविताएँ विस्तृत सीधी सीधी और सरल पर प्रभाव
हैं। नवीन जी की रचनाओं में मस्ती और उत्साह का गहरा
इहोन क्रांति के गाते भी गाए हैं। इनकी क्रांति यद्यपि के
निष्पत्तक भी है पर दीनजनों की दुर्दशा में क्षुब्ध आक्रामक
इनकी रचनाओं में अवश्य सुनाई पड़ती है।

इसके अतिरिक्त 'दिनकर' मिलिन्द आदि आर भी कई
वर्षों के राष्ट्रीय रचनाएँ करने वाले कवि इस समय खड़े !
यह दूसरी बात है कि कभी कभी इनमें 'विपथगा' क्रांति का
कारी नाद भी सुनाई पड़ जाता है।

यह सब तो गौण काव्य प्रवृत्तियों की बात हुई, प्रधान
युग में शुद्ध छायावादी कविताओं की ही रही। शुद्ध छा
कविताओं की अत्यधिक कलात्मकता और प्रेम निवेदन की वि
कारण कतिपय कवि स्वयं भी ऊब उठे। ये कविताएँ काव्य
कला की दृष्टि से चाहे उच्च हों पर यह तो मानना ही पड़े
जनता के वास्तविक जीवन से वे बहुत दूर जा पड़ीं। छायावा

प्रभुत सी कलापूर्ण रचनाएँ मुनकर या पढ़कर प्रसन्न हो जाने वाले चाहे
मयात शिथिल व्यक्ति मिल जायें पर उन्हें ठीक दृग्ग मे समझने वाले
अब भी कम हैं ।

छायावादी काँग्रेसियों का प्रचलन घरे घरे कम होने लगा ।
'छायावाद' के प्रतिनिधि कवि भी सुमित्रानन्दन पंत 'रूपाम' में युग
यात्री मुनाते का प्रयत्न करने लगे । उसके सफ़दकीप में उन्होंने
लिखा— 'इस युग की वास्तविकता ने जैसा वस्त्र आकार
ग्रहण कर लिया है उससे प्राचीन विद्वानों में प्रतिष्ठित
हमारे भाष और कल्पना के मूल हिल गए हैं । थोड़ा अब
काश में पड़ने वाली सस्कृति का पाताघरण आदोलित हो
बठा है और काव्य की स्वप्न प्रकृत आत्मा जीवन की कठोर
आवश्यकता के उस जगमग रूप से सहम गई है । अतएव इस
युग की कविता स्वप्नों में नहीं पल सकती । उसकी जड़ों को
अपनी पोषण सामग्री धारण करने के लिए कठोर धरती का
आश्रय लेना पड़ रहा है ।'

['रूपाम' (वर्ष १ सर्ग १)—ब्रुलाह १६३८]

इस समय राजनीतिक जगत में भी कुछ ऐसा परिवर्तन होता है
जिसे हिंसा का पथारा की वर्तमान प्रवृत्ति ने घनिष्ठ स्वरूप है ।
जबकि राष्ट्र में महात्मा काशीराम पर केवल गांधीवाद का ही व्यापक
प्रभाव था । गांधीवाद एक दृष्टिकोण जीवन-दर्शन है जिसे मूल
मीतिक आधार है मानव प्रेम और अहिंसा । यह राजनीति के क्षेत्र
में भी अहिंसात्मक गत्याग्रह का प्रयोग करता है । इसके अनुसार
जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य आत्मा का आध्यात्मिक दर्शन और
भगवत्प्राप्ति है । एक मेरा और मानव प्रेम की भावना के प्रसार में
ही इस लक्ष्य की पूर्ति हो सकती है । अहिंसात्मक गत्याग्रह के द्वारा
अन्ध शक्ति और शक्तियों का हृदय परिवर्तन कर समाज के अन्धकार

और अत्याचार का अंत किया जा सकता है। आर्थिक मुभार : लिए आत्मनिर्भर आमा की स्थापना और रचनात्मक कार्य संपन्न होना चाहिए।

गांधीवाद की इस विचारधारा से भिन्न मार्क्सवाद की नीति है रुख में इसके अनुसार शासन व्यवस्था हो जाने क कारण यूरोप : इसके विचारों का प्रसार हुआ। भारत में भी मार्क्सवाद की श्रव होने लगी।

मार्क्सवाद-प्रगतिवाद

मार्क्सवाद के अनुसार सृष्टि का मूल मौलिक पदार्थ या भूततरः (मैटर) है जिसका विकसित रूप है वर्तमान जगत्। जगत् निरंतर परिवर्तनशील है, पर यह परिवर्तन ईश्वर अथवा अन्य किस सर्वशक्तिमान परोक्ष सत्ता द्वारा संचालित न होकर स्वयं ही घटित होता रहता है। प्रस्तुत अवस्थान (थोसिस) के भीतर आंतरिक असंगतिपूर्ण (इनर कांट्राडिक्शन) प्रादुर्भूत होती हैं जिनके भीतर उनके विनाश के बीज निहित रहते हैं। इन असंगतियों के बढ़ते-बढ़ते एक ऐसी अवस्था आती है जब पूरा अवस्थान नष्ट हो जाता है और प्रत्यवस्थान (ऐंस्टी थोसिस) प्रतिष्ठित होता है। इस प्रत्यवस्थान के भीतर आगे चलकर पुन असंगतियों उत्पन्न होकर बढ़ती जाती हैं और उसके स्थान पर फिर एक समवस्थान (थिथेसिस) का निर्माण होता है। तात्पर्य यह कि यह सृष्टि दो विरोधी तत्वों के द्वन्द्व से स्वयं ही गतिशील होती रहती है। कुछ काल तक उसमें दोनों विरोधी तत्वों की साम्यावस्था (इक्विलिब्रियम) रहती है, फिर स्वतः क्षोभ उत्पन्न होने पर उनमें द्वन्द्व होता है और अंत में एक नया अवस्थान होता है जिसमें इन शक्तियों की साम्यावस्था रहती है। इस प्रकार द्वन्द्व और परिवर्तन का क्रम निरंतर चला करता है। इन दो विरोधी

शक्तियों की द्वावस्था में एक ऐसी स्थिति आती है जब मात्रा (क्वांटिटी) के साथ साथ वस्तु या पदार्थ में गुणात्मक परिवर्तन अत्यंत वेगपूर्ण (क्रांति की दशा) होता है। मात्रा और गुण का यह परिवर्तन क्रम भी सदा चलता रहता है। इस सिद्धान्त को मार्क्स का द्वाव्यात्मक भौतिकवाद (डायलेक्टिक मेटोरिपल्जिम्) कहते हैं।

जगत् का मूल जिस प्रकार भौतिक पदार्थ (मैटर) है उसी प्रकार समाज संघटन का मूल आधार आर्थिक व्यवस्था है। जीवन के लिए आवश्यक वस्तुओं की उत्पादिका शक्ति के विकास के अनुरूप ही समाज के व्यक्तियों का पारस्परिक संबंध स्थापित होता है। उत्पादक शक्तों के संघटन से ही समाज का आर्थिक ढाँचा सदा होता है, जिस पर मनुष्य की समस्त कार्य प्रणालियाँ—राजनीति, धर्मनीति और साहित्य आश्रित हैं। इसी विचार प्रणाली के अनुसार मार्क्सवादी 'इतिहास की अपमूलक व्याख्या' (एकनामिक इटरप्रिटेशन आफ हिस्ट्री) करते हैं।

समाज के वर्तमान दुःख स्तेज तथा वैयर्थ्य का कारण है वस्तुओं के उत्पादन, विनिमय और वितरण पर पाबों से पूर्णजीपतियों का अधिकार। इसीलिए समस्त समाज प्रधानतः दो वर्गों—शोषक और शोषित—में विभाजित हो गया है। वर्तमान पूर्णजीवादी व्यवस्था के उन्मूलन से ही वर्गगत स्वार्थों और समाज के वैयर्थ्य का नाश हो सकता है। वर्तमान आर्थिक व्यवस्था में आनूल परिवर्तन करना आवश्यक है, और यह सब होगा क्रांति के द्वारा। क्रांति वर्ग-संघर्ष के परम विकास की अवस्था में ही घटित हो सकती है, अतः समाज में वर्ग चेतना उत्पन्न करनी चाहिए।

मार्क्सवाद के अनुसार वर्तमान अवस्था में आनूल परिवर्तन होने पर ही वैयर्थ्य मिट सकता है इसलिए मार्क्सवादी लोग पीढ़ियों की दशा में गुणार मात्र में संतुष्ट नहीं होते। पीढ़ियों के लिए अधि

प्रगतिवाद का इतिहास

‘प्रगतिवाद’ शब्द का प्रयोग हिन्दी में गाँदे नर हुमा हा पर
 बस मान अथ में सामान्य रूप में यह पद सन् १९३६ से हिन्दी
 साहित्य में प्रचारित होने लगा, जब सन १९३६ में ‘प्रगतिशील लेखक
 मण्डल’ का प्रथम अधिवेशन हुआ और उसने समापति हुए प्रेमचंद

० प्रगतिशील लेखक मण्डल (प्रोग्रेसिव वाइटर्स एसोसिएशन)
 अब एक अन्तर्राष्ट्रीय संघर्ष के रूप में हो गया है। अनेक देशों में
 इसकी शाखाएँ हैं। इसकी स्थापना सन् १९३१ में हुई थी। प्रगति
 शील लेखक मण्डल १९३० एम० एच० एच० के सम्पादन में इसका पहला
 अधिवेशन परिणत हो गया। डा० सुल्तान अहमद और समाद महीर
 के अध्यक्ष में भारतीय प्र० ल० म० का स्थापना १९३६ में हुई।
 इसके पहले अधिवेशन के सम्पादन प्रेमचंद जी और दूसरे के महा
 कवि रवीन्द्रनाथ टागोर हुए।

जी। अपनी भाषण में उन्होंने साहित्य में बढ़ती हुई प्रेम और घेदना की लहर की तीव्र आलाचना की। उन्होंने कहा कि साहित्य केवल मनोरंजन का वस्तु नहीं है। वस्तुमान काल में जब कि हमारे समाज और देश की अवस्था संकटापन्न है, हमें ऐसा साहित्य निर्मित करना चाहिए जिसमें वर्तमान विपत्तावस्था का प्रतिबिम्ब और उससे परित्राण पाने के लिए आशापूर्ण संदेश निहित हो। "नीतिशास्त्र और साहित्यशास्त्र का लक्ष्य एक ही है—केवल उपदेश विधि में अंतर है। नीतिशास्त्र तर्कों और उपदेशों के द्वारा बुद्धि और मन पर प्रभाव डालने का प्रयत्न करता है, साहित्य न अपने लिए मानसिक अवस्थाओं और भावों का क्षेत्र चुन लिया है। मुझे यह कहने में हिचक नहीं कि मैं और चीजों की तरह साहित्य को भी उपयोगिता की तुला पर तोलता हूँ। फूलों का देखकर हमें इसलिए आनंद होता है कि उनसे पत्तों का आशा होती है।"

अंतिम वाक्य ध्यान देने योग्य है। प्रगतिवादी का यह विद्वान्त भी इस उपयोगितावादी मत का बहुर प्रचारक है। पर मार्क्सवाद विद्वान्ता का उत्प्रेक्ष्य प्रेमचंद जी के भाषण में नहीं है। आर्थिक परिस्थितियों और वर्गसंघर्ष का विभिन्न दशाओं के बीच चलकर साहित्य की परीक्षा करने का उपक्रम अभी तक नहीं हुआ था। यह हुआ कुछ दिन बाद 'विशाल भारत' में प्रकाशित एक लम्बे लेख में।^७ इस लेख में मार्क्सवाद, वर्गसंघर्ष और भौतिकवाद की लम्बी चर्चा के साथ ही वर्तमान साहित्य को पूँजीवाद की हाथी मूल प्रवृत्तियों का चोटक बताया गया और वर्गवादी साहित्य की रूढ़ि का आग्रह किया गया।

७ "भारत में प्रगतिशील साहित्य की आवश्यकता"—लखन-धीशिवरानसिंह चौहान, विशालभारत, मार्च १९३७।

प्रगतिवाद काव्य की दृष्टि पर प्राथमिक दृष्टा का झलक जुलाई १९३८ में श्री मुमिबानदन पंत और श्री नरेन्द्रशर्मा क संपादकत्व में निकलने वाला कालाकाँकर के मासिक पत्र 'रूपाम' में मिली। रूपाम यही दिनों बाद बढ़ हा गया। इसपर प्रगतिवाद की विमर्श व्याख्याओं और रचनाएँ काशी के 'ईस' में व्यवस्थित रूप से प्रकाशित होने लगी, जब से (१९४१) उसका संपादक श्री शिवदान सिंह चौहान हुए। इस बीच प्रगतिवाद का चचा अथ पत्रिकाओं में भी होती रही। हिंदी साहित्य सम्मेलन के पूना अधिवेशन में प० नंददुलारे वाजपेयी ने हिंदीकाव्य की इस नवीन प्रवृत्ति पर विस्तृत प्रकाश डाला।

अब तर पतजा का 'युगवाक्या' प्रकाशित हा चुकी थी और बहुत से कवियों ने इस प्रकार की रचनाएँ लिखनी प्रारम्भ कर दी थीं। आलोचना के क्षम में भा माकधवादी विचारों में रँगे लेना के दधन होने लग।

माकध के मौक्तिकवाद से प्रभावित होकर रचनाएँ करने वालों में १८ जी सब से आगे आए। इन मौक्तिकवादी विचारों का लक्ष्य म लेकर पहले पहल लिखी गई प्रगतिवाद रचनाएँ इनकी 'युगवाक्या' 'मानवपत्र' और श्री शर्माबिलास शर्मा की 'कल्पियुग' और 'इंद्रियों का ठाव' हैं। रूपाम के अकों में पत्राजी की नए दृग की कई कई रचनाएँ एक साथ प्रकाशित होने लगीं। इसमें बहुत से नवयुवक कवि इस आर भाएँ हुए। पत्राजी की एसा रचनाओं के कुछ अंश उद्धृत किए जाते हैं—

“आना ही धन जाय नैह नय,
ज्ञान ज्योति ही धियग्नेह नय
हाम अथ आशाऽआशाच

बन जाय गाय, मनु, पारि ।

युग की पाणी ।

(युगपारि)

x

x

x

x

x

“युग, युग स रच शत शत नैतिक बंधन,
 धर्म दिया मानव ने पीड़ित पशु-जन ।
 चिद्रोही हो उठा आन पशु दमित,
 यह न रहेगा अब नव युग में गर्हित ।
 नहीं सहेंगे रे यह अनुचित ताड़न,
 रुढ़ि नीतियों का गत निर्मम शासन ।
 यह भी क्या मानव जीवन का लाइन ?
 यह मानव के देहभाव का बाधन ।
 नहीं रहे जीवनोपाय तब विकसित,
 जीवन-त्याग कर न सके तब इच्छित ।
 नैतिक सीमाएँ कर यह निधारित,
 जीवन इच्छा की जन ने मयादित ।

+

+

+

+

+

देव और पशु, भावों में जो सीमित,
 युग युग में होता परिवर्तित, अवसित ।
 मानव-पशु ने किया आज भव अनित,
 मानव-देव हुआ अब यह सम्मानित ।
 मानव के पशु के प्रति,
 मध्यवर्ग की हो रति ।

(मानव पशु

—रूपाभ, जुला

“आन मत्स्य, शिव, सुन्दर केवल
घर्षों में हैं सीमित,
उभयमूल मस्कृति को होना
अधोमूल है निश्चित।”

(मूल्याङ्कन)

—नरूपाम, अगस्त १३८

हम पक्षियों में पादित जन समुदाय की उस विप्लवावस्था का वर्णन है जिसे समाज के उच्च वर्ग ने अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए समर्थ बनाया है। शत शत नैतिक बंधनों के जाल बिछा कर निम्नवर्ग को समाज ने जकड़ लिया था पर आज उसमें नवीन जागरूकता और चेतना का आविर्भाव हो गया है। अब वह रुढ़ियों और नीतियों के अनुचित बाधन नहीं रहेगा। वर्तमान समय में सत्य शिव और सुंदर धर्मपूर्ण उन्नत वर्ग की सीमा में ही संकुचित हैं। ऐसे वर्ग समाज का नाश करके धरा में ऐसा स्वर्ग समुपस्थित करना चाहिए जिस में न तो भेदभाव हो, न रुढ़ियों का जाल हो और न जहाँ ‘जन भ्रम घापण’ हो।

इस प्रकार नवीन काव्य की मूल विचारधारा का परिचय पहले पहल पतंगी ने ही दिया। अतएव हिंदी में प्रगतिवाद (सामुदायिक) काव्य व सृजनात्मकता से ही ठहरते हैं और प्रगतिवाद का लक्ष्य प्रारम्भ होता है सन् १९३८ में।

ऊपर उद्धृत पक्षियों में मित्र राजनीतिक विचार का आभाव मिलता है और पूरा विचार पतंगी की रचनाओं में हुआ, पर ध्यान देने की बात यह है कि उन्होंने वर्ग संघर्ष और विध्वंसक क्रांति का प्रचार नहीं किया है। जहाँ उन्होंने रुढ़ियों की मर्चना की है वहीं संकीर्ण भौतिकवादियों के दृष्टि विचार की कामना भी प्रकट की है। स्पष्ट राजनीतिक मूल मतांतरों से, अन्य प्रगतिवादी कवियों की

अपना, अपनी कवि का रूप एकदम भाँड़ रहा जा न कुछ न कुछ पता का प्रयोग भी उहाँ किया है। उनकी नज़ान परीक्षाएँ हज़ की कुछ सूत्रों का एक एक कथा में है— एनिहालिज्म भौतिकवाद और भारतीय अध्यात्म दर्शन में शुभ किसी प्रकार का विरोध नहीं जान पड़ा, क्योंकि मैंने दोनों का एकांतर कल्याणकारी पक्ष ही ग्रहण किया है। मार्क्सवाद के अंदर भ्रमजालियों के सगठन, वर्ग संघर्ष आदि से संबंध रखने वाले बाह्य दृष्टि का, जिसका वास्तविक निरर्थक आर्थिक और राजनीतिक मातृभूमि ही कर सकती है, मैं अपनी कल्पना का अंग नहीं बनने दिया है।^१ ० और इसलिए यदि कोई कहकर प्रगतिपथी यह कहता मिले कि 'पूजा जहाँ पहुँच गई वह अब भी है' अथवा 'अब भी उनका दृष्टिकोण में हम उन्हें मोलतल अंतर नहीं देखते' तो समझना चाहिए कि असली शिक्षाएँ यह हैं कि पूजा अब भी अपना कवि रूप बनाए ही चल रहे हैं।

हिंदी में प्रगतिवाद की लहर चल पड़ने पर उन कवी और अंगरेजी कविताओं की बहुत अधिक चर्चा चलने लगी है। मार्क्सवाद के छाँचे में भलीभाँति ढली हैं। अब संक्षेप में यहाँ कवी और अंग्रेजी के वर्तमान का साहित्य का परिचय दे देना आवश्यक प्रतीत होता है।

इसमें कोई संदेह नहीं कि कविता और समाज का अविच्छेद्य संबंध है अतः सामाजिक मनोभावों का प्रतिबिम्ब उस पर पड़ना आवश्यकता है। इतना ही नहीं, उसमें ऐसे उत्थानमूलक भावों का भी समिक्षा होना चाहिए जो जनमन को कर्म प्रेरक उत्साह प्रदान कर सकें। पर यह ध्यान भी होना ही चाहिए कि अपने कुछ विरोध गुणों के कारण जिस रचना प्रकार का नाम काव्य पड़ा उसमें उन गुणों की अवस्थिति आवश्यक है, अथवा उसे काव्य न कहकर कुछ

गौर कहना होगा। पर इन बातों पर ध्यान गया नहीं। प्रसिद्ध
राष्ट्रीय राजनीतिक प्राति क पश्चात् यहाँ ऐसे नियम बनाए गए जिन्होंने
राष्ट्रिय का भी अपने ही संकेतों पर चलने की बाध्य किया।

रूसी प्राति क पहले यहाँ कवियों के दो प्रधान दल थे—भरिष्य
का मुख्य स्वप्न देखनेवाले 'भरिष्यवादा' (फ्यूनरिस्ट), और प्रापड
का मनाविज्ञान में प्रभावित प्रतीक पद्धति पर चलनेवाले 'मूर्तिक-पना
वादी' (इमेजिस्ट)। भरिष्यवादा दल के भीतर ही मार्क्सवाद के
प्रचारक बने भी थे। मूर्तिकरूपवादियों का दल भी अपनी दुर्बल
व्यक्तिगैरिष्यवाद के कारण कुछ दिनों बाद ही समाप्त हो गया था।
१९१८ गए भरिष्यवादी। बाद की इका भी आज बका नहीं १९१८ गइ,
यवौंकि प्राति क पश्चात् तो एक मए समाज का स्वरूप प्रस्तुत ही हो
गया था। अब प्रस्तुत रूसी समाज पररथा और राजनीति में सदमा
कवियों ने एक नया बाद फिर खड़ा किया, जिसका नाम रखा
समाजवाद। यथामवाद (सोशलिस्टिक रिवल्यूशन)। इसका कहना
है कि समाज की प्रगतिशील शक्तियों को पहचान कर उनकी अभि
प्रति में बाधित क पाग देना चाहिये। और यह प्रगतिशील स्तर है
मार्क्सवादी विचार धारा। इसका प्रसार करने में कवियों की पुत्र भाग
राहिए। अथात् प्रगतिशील कविता का मुख्य लक्ष्य टहराया
गया। अब व्यावहारिक बन देगिए। आर्थिक उत्पत्ति क लिए रूस
में 'सर्वसाधारण योजना' और 'सामूहिक कृषि कार्य उपयन्त्र' आदि की
व्यवस्थाएँ हुई। कवियों और जनता में आझाह किया गया कि ये
इन योजनाओं को सफल बनाने के लिए अपनी रचनाओं के द्वारा
इन योजनाओं के स्वरूप तथा जनता में समाज का अवगत कराएँ।
राष्ट्रियवादों के दल इन प्रयत्नमय योजनाओं का निरोधन कर
के लिए भग्न मए जिसमें थे होकर विदेशों में इनका प्रचार कर रहे।

इनका साहित्यिक मोर्चा (लिटरेरी फ्रंट) कायम हुआ । ये सत्र नवीन व्यवस्थाओं की प्रशंसा करते और मार्क्सवादी विचारों की यजना अपनी रचनाओं में करने का आग्रह लेखकों से करते थे । यही नहीं, रूस के शासनाधिकारी भी इन साहित्यिक सघटनों का निर्देश देते रहे, जिनके अनुसार लेखकों को अपनी नीति निर्धारित करनी पड़ती थी । साहित्य की कोई अपनी सत्ता यहाँ नहीं रह गई । यह राजनीति का अनुगामी और प्रचारक हुआ । अधिकांश नवयुवक लेखक अपने को 'पहले मार्क्सवादी फिर और कुछ' समझने लगे ।^७ मार्क्सवादी कवियों में प्रधान है मायाकोव्स्की । यह एक उद्यकाटि का कवि था । भावों का उत्कर्ष और काव्य कल्पना की सौंदर्यच्छटा इसकी अनेक रचनाओं में देखने को मिलती है । इसकी क्रांति के पश्चात् की रचनाओं में भी कई मनोहर काव्य स्थल मिलते हैं । ऐसी ही रचनाओं के कारण साहित्य में उसकी प्रतिष्ठा होगी । पर रूस में राजनातिकों ने जब साहित्य पर तरह तरह के बंधन लगाए तब उसी के निर्देशों पर रूसी काव्य चलने लगा । मायाकोव्स्की ने भी यही पथ ग्रहण कर लिया । उसने कहा कि मैं काव्य की उद्यमभूमि से कम्युनिज्म के बीच बूढ़ रहा हूँ, क्योंकि अत्यन्त मुझे प्रेम भावना नहीं मिलती । मैं सोवियत के लिए 'मुख का उत्पादन' करनेवाला कारखाना हूँ" इत्यादि । †

७ उदाहरण के लिए एक रूसी कवि ने लिखा है—

I carry my Membership card not in my pocket
in myself —Bezymensky

† I

hurl myself into Communism

from the heights of Poetry above

because without it

इन सब का फल यह हुआ कि रूसी काव्य साहित्य एक पूर्व
निश्चित विचारधारा के अनुसार निर्मित होने लगा जिसमें उसमें कृत्रि

for me,
there is no love

x x x x

I'm a Soviet factory
manufacturing happiness

x x x x

I want the pen,
to equal the gun

to be listed

with iron
in industry

And the Polit Bureau's agenda
Item 1,

to be Stalin's Report on
"The output of Poetry is

It's like this
and that

Out of burrows
the working class

has climbed right up
to the top of the tree

In the Union Republics
the pre-war levels

been far surpassed

in the word standing
of Poetry

—From "Home Guards" —translated by Herbert
Marshall

अथ उनक लिए नहीं हे जबतक कि उनका स्तर बहुत निम्न न हो
और उनमें छिछली भावकता का प्रभु न मिला हो ।७

* Poetry for the Workers became at once an ideal and a cant phrase for poetry unless it is diluted to the point at which it becomes the doggerel vehicle of sentiment rarely interests the masses—though among the masses as well as among the classes there are a few to whom poetry is a necessity.

—*Twentieth Century Literature*, by A C Ward Page 198

काव्य-सिद्धांत

काव्य प्रातिविधिक सत्ता है। प्रतिविब किसका : प्रतिविब उस
 हरय जगत् का जो समस्त चर और अचर सृष्टि की समष्टि है। इस
 सृष्टि अथवा व्यक्त सत्ता के अंतर्गत जड़ प्रकृति, जीव-जंतु तथा मानव
 समूह सभी आते हैं। मानव-समूह समाजों में व्यपटित है। इन समाजों
 तथा इनकी विभिन्न व्यवस्थाओं का सबटन व्यक्तियों के पारस्परिक
 सामाजिक संबंधों ने समझ बनाया है। राग विराग की यह प्रवृत्ति
 निरुचि हमारी मनुष्यता के साथ साथ लगी है। समाज से दूर बन के
 एकांत में रहने वाले व्यक्ति का भी इससे छुटकारा नहीं। जिस वृद्ध
 की मुलव छाया में वह आभय लेगा उसके प्रति भ्रमत्व का अनुभव
 करेगा, पशु द का प्रात कालीन मजुर कलरर मुनकर वह प्रसन्न
 होगा और यहाँ कुछ ऐसी पृथग्वय बस्तुएँ भी होंगी जिन्हें वह नहीं
 पावेगा। कहने का तात्पर्य इतना ही कि राग विराग की प्रवृत्ति

सागर मगामात्र मनुष्य जगत् के साथ है। काव्य इन सभी—पार १६ जगत् और प्राणिमग्न तथा उनका बीच में गिरा होने वाला मगामात्रों—का प्रतिबिम्ब है।

मयता व विनाश के बहुत पहले मनुष्य जगत् में रहता था। जवानापाप के लिए दम आत्र नैमी मुदिधार् नहीं प्राप्त थी। भावों का अदान प्रदान भी सुगम न था। पर मुक्त दुःख, राग विराग की अनुभूति तो उस हानी हो थी। प्रकृति के किसी सुप्रमा-महिन रहस्यमय रूप का इलकर वह विस्मय विमुग्ध हुआ और किसी वास पार दरव का देखकर उसे डर भी लगा। किसी मुहावन व्यक्ति का बसने प्यार किया, किसी मनाश वास के प्रति उसके मन में ममता जगी, विद्रूप वस्तु या व्यक्ति से उमे ग्लानि या घृणा हुई। धुधा-नृति पर उमे सताप और भूत लगने पर कष्ट का अनुभव हुआ। अपने मन के इन विभिन्न भावों को उसने पहले सको और अस्पष्ट धनियों द्वारा व्यक्त किया। धीरे धीरे शब्दों का निमाण हुआ। एक शब्द से, एक साथक धनि से, सब लाग एक साथ ही एक ही वस्तु या भाव का ग्रहण करने लगे। इस प्रकार जब शब्दों में ऐसी प्रतीकात्मकता आ गई कि उनके द्वारा एक प्रकार के भाव समग्र हो सक तब भाषा पनी। दैनिक जीवन के व्यवहार में आते आते भाषा मँजवी गई और उसमें बहाव आता गया। यही बहाव लय या संगीत तत्त्व है। सामूहिक आनन्दसक, यज्ञ, आयेष्ट यात्रा आदि के अवसरों पर इसी लय युक्त भाषा का व्यवहार होने लगा। पर वह पूरा रुचिता नहीं हुई।

लोक हृदय का पहचानन वाक समाज के कुछ विशिष्ट व्यक्तियों या प्रातिमों ने इसी लययुक्त भाषा में सामा य रूप विपाद के भाव व्यक्त किए। इन्हीं कवियों ने काव्य की नींव डाली। इनका हृदय लोक भावनाओं का सञ्चय था, जिससे काव्य स्रिता की धारा प्रवाहित

है। इनका व्यक्तित्व सुख-दुःख का भावनाएँ जो हृदय में लीन हुई थी। व्यक्तित्व हानि लाभ का भावना से दूर इनकी यात्री ने हा ल क क रन - तुनी क सम्मुख गायत्रीद्वय और वसुधादय का विभूति का उद्घाटन किया। यह सवाट्टे कान्तमन्त्रित वाणी ही काव्य 'नमो' है।

मानव सम न ही नहीं। रन - हानि सम्मुख चराचर क साथ तादात्म्य का अनुभव किया था। एम्मे ही विशाल हृदय क साथ काव्य का गन्ध है। व्याध क राणी सं भारत रत्न म सुन हुए क्रीड क पीड़ा का अनुभव क आदि कवि क हृदय में जो गीत का रा यथाग हम ल क —

मा निरा प्रतिशुल्यमगम गाश्चनी ममा

यत्नाचमिथुनात्तमयधी सममोहितम् ॥

न यह कला उभमे न ता 'अथ' (धन) की प्रेरणा थी न

माक्सवादी आलाचक्र काष्ठवेल काय क आर्थिक मूलधार के लिए कठार आग्रह करता है। * पर सच पूछिए तो काय का क्या, जीवन का भी आधार केवल आर्थिक नही है।

मनुष्य की सबसे प्रधान इच्छा है सुख या आनन्द की प्राप्ति। इसकी प्राप्ति के लिए वह सुख सामग्री एकत्र करता और जात के गाना जटिल व्यापारों में उलझता है। पर यदि मनुष्य केवल अपने व्यक्तिगत सुख का हा ध्यान रखने लग तब तो यह उसकी घर शायेषरता हुई। उसके सुख या आनन्द की सामग्री की भी परिमिति इतनी चाहिए जिससे उसने दूसरे साथियों को कुछ न हो। उसे अपने आनन्द के साथ लोक के आनन्द का भी ध्यान होना चाहिए। यही नहीं, लोक के आनन्द में उसे भी सुख मानना चाहिए, अन्यथा समाज का सुचारु संचालन ही नहीं हो सकता। इसलिए समाज का संचालन पारस्परिक सामनस्य के आधार पर होता है, जिसे पुराने लोग 'धर्म' कहते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि मनुष्य पहले किसी वान की इच्छा करता है और फिर उसकी पूर्ति के लिए सुख सामग्री एकत्र करता है। पर उसकी व्यक्तिगत इच्छा और सुख सामग्री-संकलन पर सामाजिक सीमाएँ के नियमों का अंकुश भी रहता है। मानव जीवन के विकास के लिए इन सभी का योग आवश्यक होता है केवल अथ का ही नहीं।

काष्ठ पर इन स्थूल व्यवस्थाओं का भी प्रतिबिम्ब पड़ता तो है पर मूलतः उसकी जन्मभूमि हृदय है। वह हृदय, जो अपनी भावात्मक सत्ता के पूर्य विस्तार का अनुभव विश्वात्मा में खीन होकर ही करता

* Poetry is regarded then, not as something racial, rational, genetic or specific in its essence but as something economic

है। ऊपर उल्लेखित आदि-कवि की प्रमत्तता पक्षियों में कौन सी आर्थिक प्रेरणा है, तुलसी की पुनीत भक्ति भावना में किस आर्थिक प्रेरणा का योग था। हर क काव्य में कौन सा आर्थिक रंग है।

काव्य का प्रधान लक्ष्य है मनुष्य की भावात्मक दृष्टि का विस्तार। यह होता है उसका रागात्मक वृत्तियों का तीव्र और परिष्कृत करने में। रागात्मक वृत्तियों में हृदय में उत्पन्न होती है और यह हृदय ही काव्य की प्रकृत भूमि है। काव्य का स्वयं इन रागात्मक मन वेगों में ही है। ये मन वेग आर्थिक स्थिति के छौंछे में दृढ़तर नहीं निकलते चाहे इनके प्रकाशन के ढंग में बाहरी परिस्थितियों के प्रभाव में कुछ स्वरूप-विभिन्नता दिग्राह्य पड़ जाती हो। पर इन बाहरी परिस्थितियों का भी आर्थिक स्थिति एक अंगमात्र है।

काव्य की रागात्मक वृत्ति का विस्तार कमी या प्रकृति के वैभव के शीघ्र होता है और कमी मानव समाज के साथ। उसकी कल्पना जगत् में बाहर दिशा अथवा आदर्श और आनन्द के लक्ष में भी विनियमित करता है। पर यदाकदा ही। इस प्रकार काव्य की मुख्य भूमि ही दो ही रहती है—प्रकृति क्षेत्र और मानव समाज। प्रकृति के व्यापारों में कवि जैन प्रवेश करता है और पठक या भोक्ता का भाग्य बन कराना चाहता है किन्तु काव्य की विस्तृत भूमि मानव समाज ही है। फल प्रकृति के व्यापारों में काव्य का लक्ष्य विरल नहीं है। वरन्, यह हमारे जीवन में स्फूर्ति लाने या उद्वेग करने के लिए है। कदाचित् इतिहास में शीघ्र शत्रुओं में प्रकृति के व्यापार उद्वेग के अंगमात्र रमे गए हैं। इस प्रकार मानव-समाज ही मनुष्य काव्य की विस्तृत भूमि ठहरता है। यहाँ यहाँ हम उसी का विचार करने हैं। प्रतीति का कव्य में भी मानव समाज का ही काव्य-भूमे मानकर जाननी है।

एतान् में मनुष्य रहता है। मानव जीवन में ही समाज की भावना

रहना। इस एक ही अनुभूति के कारण हम अतीत की ओर
आकृष्ट होते हैं और भविष्य की आनन्द कल्पना में प्रसन्न। यदि
यस्य साथ ही हमें यह दृष्टि मिले कि अतीत के गढ़े मुझे उन्मादने में
क्या लाभ? और जिस भविष्य में हम न रहेग उसका आनन्द कल्पना
और उसके लिए प्रयत्न क्यों? तब तो वर्तमान जीवन में सुख भाग
लगा ही हमारे सारे कर्मा का चरम लक्ष्य होता। पर ऐसा नहीं है।
हमारा आनन्द लभ्य पूर्ण होना है जब हमारा दृष्टि वनपान के अनि-
रिक्त आग और पौछ में जाता है। इसी भाव में आर्य गृहस्थ अपने
मृत पुरजों के प्रति कृतज्ञतापूर्वक नमस्कार करता है और अनेक
यज्ञ उपन्यासों द्वारा अपना भद्रा के फल उनकी स्मृति में अर्पित
करता है। तब और मध्यम के आधार पर चाह भारतीयों की इस
मनादृष्टि की ऐसी उदासी जग पर हमें तो मनुष्य की भावात्मक
सत्ता का पूर्ण विस्तार इसमें दिशा देता है। इस दीर्घकाल-पापिनी
भावात्मक सत्ता की अनुभूति में योग देता ही काय का उच्चतम
लक्ष्य है।

हम प्रकार कहना चाहते हैं कि काव्य दो प्रकार का
होता है १—सामयिक जीवन की व्यञ्जना करने वाला और २—
भारतकाल-पाप मानवजीवन की भावात्मक सत्ता का आभास देने
वाला। दूसरा प्रकार काय का उच्च और गहरा स्वरूप उपलब्ध
करता है और पहला उसकी कनिष्ठ तथा अनित्य स्वरूप। भार एक
दो ही है पर सामयिक जीवन का व्यञ्जना करनेवाला काय या
साहित्य के दो उत्कृष्टावस्था में अनुचित है।

सामयिक जीवन की व्यञ्जना करने वाला साहित्य की हम महत्त्वदा-
तरी मानते हैं। हमारा कहना केवल इतना ही है कि दूसरे प्रकार के
उपलब्ध कायों का अपूर्ण करने के अन्तर्गत उपलब्ध में यदि यह
नहीं करता चाहिए और दूसरा अथवा सदा वर्तमान पर ही दृष्टि रक्क

इस प्रकार व्यक्तित्वगत समग्र ऋण प्रपञ्च में हम हस्तार विज्ञान भाग
 की उच्च उद्योगिता पर न्याय प्रसारण करती हैं जहाँ हम सार्वजनिक
 व सामाजिक जीवन का अनुभव करते हैं। दूसरे व दूसरे पर हम दुःख
 हाते हैं दूसरे का पादा रत अनुभव कर हम राग है और दूसरे पर हर्ष
 और आनन्द में हम भी जाह्लादित हान है। यहाँ जहाँ समग्र नर
 अन्तर को हम उमा एक महाप्राण में मग्राण पान है जिसमें हमारा
 हृदय भी स्थित कर रखा है। हमारा सत्ता का विराट् भाग में लप हा
 जाता है। जो आत्मा नहीं मानते, परमात्मा नहीं मानते वे भाता
 किता एक शक्ति की सत्ता स्वीकार करत हैं जिसमें इस सृष्टि का उत्पत्ति
 और विकास का समग्र वनापा। जिसमें यह सृष्टि गतिमान है। यही
 यह शक्ति है जिसने द्वारा सृष्टि का पालन और सहार हाता है इस
 शक्ति में तूय भी भास्तर है। यहाँ शक्ति अग्नि में दाह रत कर और
 परमान में गति का रूप धर कर स्थित है। इसका बिना गिर भी हात
 है। समस्त ब्रह्माण्ड का चर अन्तर में यही व्याप्त है और इसी का
 करपना इश्वर, विराट्मा आदि का रूपा म हुई है। यहाँ एक सत्ता
 सर्वभूता में स्थित है जिसका सत्ता अनुभव काय ही करता है। हमारा
 सन्तुष्टि मनोवृत्तियों का परिष्कार कर यह उनका प्रसार करता है।
 इतना ही नहीं हमारा कुटिल या सुम मनभावनाओं का जग कर
 यह उच्च उदात्त बनाता है।

इस प्रकार की सचेदनात्मक अनुभूति उत्पन्न करने का कारण
 का य परोक्षरूप में लोककल्याण में योग देता है। समाज का व्यक्तियों
 का पारस्परिक सीमावर्ष काय की सचेदनात्मकता का और भी हा
 उनाता है। सर्वर्म की प्रेरणा मा इसमें मिलता है पर उपदेश और
 नीतिनिर्धारण का द्वारा नहीं करता अनुभूति का माध्यम से। तात्पर्य
 यह कि हम की प्रेरणा काय न सकता है, पर पुष्ट काय का निर्माण
 कर्म की प्रेरणा का लक्ष्य में सहजक नहीं हाता। सभी उद्योगों का

का य उच्चमारा मे अतप्रव हात है और उनका प्रभाव पाठक के दृश्य पर पड़ता है। इस प्रकार उन उच्चमारा के अनुसार उम्भ मन में ईरणा उपन हो सकता है। पर का य का मूल लक्ष्य यह नहा है कि वह रोने काटन के लिए किसानों का तत्पर कर। हल चलाता हुआ किसान यदि कहत करत मुने भाइ साधा या 'शुलस दास मनो भगवाना' गा उगा है तो हम्न यह निष्पत्ति नहा निकाला जा सकता कि काव्य हल चलाते के भ्रम का दर्शन बनाने के लिए हा मित होता है या दाना चारिए। काव्य का उपयुक्त व्यावहारिक विनोद पताभी का भी जल्द कर सहृदय के पुराने जानाबों का उसका साध्य अनुभव धर्म, अध, काम और मम्य रहा है, पर व्यावहारिक दृष्टि से जल्द पर भी उद्देश्य काव्य का जल्द कर जल्द अध' हा पर रहा पत्रक दिया। 'अर्थ' मे भी उसका सन्ध हा सकता है पर काव्य का मूल लक्ष्य न तो ये व्यावहारिक आनय सकता है और न इहे दृष्टि में शरकर उन्नतकटि के काव्य का रचना होती हा है।

युग की विभिन्न परिस्थितियाँ और प्रवृत्तियों का प्रभाव कवि पर पड़ता है, उसकी भावमनो भी न रस्य, गूँत ही होती है अतएव उसका रचना पर काल विचार की बाध परिस्थितियों का प्रभाव पड़ता हा है। काव्य विचार के रचनाकाल मे कौन कौन सा मानाएँ और विचार समान के और मरतेन हा रहा थी, अपने युग की प्रवृत्तियाँ न जाल स्थि प्रकार प्रभावित हुए और कहीं तक उक्त अनुसार न और कहीं तक उन परिस्थितियों का परिवर्तित करने में सफल हुए— इन सभी का अन्तर्गत काव्य में किया जा सकता है और निश्चय ही यह उक्त एक उपयुक्तता भी है, पर इनका प्रभावित मान दिखाने के लिए काव्य की रचना होता है और न समा आश्रय करने वाला है काव्य-विषयमक सिद्धांत हा बनाया जा सकता है।

अतएव न न पद हा जल्दों का उन्मत्त किया है—एक

यह जो जीवों का संघ बनती है और दूसरी वह जो जीवन को भेद्यार बनाती है। काव्य इस दूसरी शक्ति में प्रादुर्भूत और जीवन के उद्भव में साग देना वाली शक्ति है। माना जा सकता है कि सबसे पहली आवश्यकता तो जीवन का स्थिति बचाए रखना की है। पर विचार करने पर जीवन का भेद्यार बनाने वाली शक्ति के मूल में ही जीवन का संभारना छिपी मिलती है। जहाँ धारण करने के साथ ही साथ अनुप्य की अतृप्तियों का भी स्फुरण होता है, पर उन्हें परिष्कृत बनाकर व्यवहृत करने में ही जीवन की सफलता है, जन्म की सफलता है। काव्य जीवन को भेद्यार बनाने वाली शक्तियों के विकास में ही सहायक होता है। हमारी सभी शारीरिक क्रियाएँ हमारे जीवन को समन बनाती हैं पर उन्में भेद्यार बनाने का काव्य तत्त्वस्थितिक और हृदय के योग से ही समन है। उस हृदय के मूल आधार पर लक्ष्य होकर काव्य मानव जीवन की ऐसी भेद्यार शक्तियों के मूर्तरूप का प्रत्यक्षीकरण और अनुभव कराता है जो किसी दूसरे साधन से सम्भव नहीं। इसीलिए गोस्वामी तुलसीदास ने उसे सबका हित करने वाला सुरसरि के समान बताया है—

कीरति भनिति भूते भलि सोई,

सुरसरि सम सन कहँ हित होई।

मानव जीवन को भेद्यार बनाने वाली शक्तियों की वृद्धि में सहायता देकर शक्ति इस प्रकार सभी कालों में सबका हित भी करती है। सामयिक जीवन की स्थिति पर भी उच्चकोटि की काव्य सज्जना हो सकती है जिसका मूल्य चिरतन हो। यह सब हुआ जब लोक की कल्याणकारी उन शक्तियों को अनुभूति की तीव्रता के साथ कला की मर्यादा में व्यक्त किया जाय जो मानव जीवन के विकास में योग देती हैं। कवि की उस घटना विशेष में निहित उस भाव की अनुभूति प्राप्त करनी होगी जिसने मानव जीवन के उद्भव में योग दिया है।

काव्य में उन उच्च भावों का व्यञ्जना भी हावी है जो समाज का उत्तमविधीन बनाने में सहायक होते हैं। अर्थात् शिथिल भावों को व्यञ्जना करने का साधन भी काव्य है। तो क्या काव्य के द्वारा विशेष साम्प्रदायिक मतों के आचार विचार का प्रचार भी करना ठीक है। इस प्रश्न पर विचार करने के पक्ष कविता के स्वरूप और उसके उद्देश्य का एक बार पुनः स्मरण कर लेना ठीक होगा। काव्य ऐसी सांसारिक निर्मिति है जिसमें मानव अनुभूतियों के सहार लेने अथवा मीमांसा का उद्घाटन होता है जिसका आनन्द देश और काल की समाप्ति का पार कर भी प्राप्त किया जा सकता है। इससे द्वारा हमारे समाज में उत्तम और उदात्त बन्ते हैं तथा हमारे हृदय का विस्तार होता है। काव्य के द्वारा मानव परिपूर्ण होत है अर्थात् हमारा 'यत्किञ्चित्, स्वायत्त और उच्चचित्त मनेहृत्तियों का प्रसार होता है। पृथ्वी में जिन वस्तुओं और सुख साधनों का हम 'यत्किञ्चित् हानिलोभ' की भावना न करते आ रहे थे, उन्हें एक की दृष्टि में देखने लगते हैं। जिनमें हमारा कोई व्यक्तिगत स्वयं नहीं उनके हानिलोभ, सुख दुःख और हृदय विषाद में हमारा हृदय भी सम्मिलित होकर उद्गम्य सुख दुःख का अनुभूति प्राप्त करता है। इस प्रकार काव्य प्रचार में भी अधिक अपने उद्देश्य की पूर्ति करता है फिर भी वह प्रचार नहीं करता।

काव्य के उद्देश्य और प्रचार के स्वरूप में ही अंतर है। काव्य साहित्यिक भावनाओं का अनुभव कराता है और 'प्रचार' अपने मत विचारों का विनाश कर अपनी अर आकांक्षा करने की कोश करता है। काव्य जिन भावनाओं का अनुभव कराता है वे साम्प्रदायिक साहित्यिक के नियम आदेश हैं और 'प्रचार' साम्प्रदायिक और उच्चचित्त मनेहृत्तियों का। काव्य का उद्देश्य प्रचार का साधन नहीं मन्त्रा वा होता। सुख दुःख का जिन मन्त्र भावना का अभिव्यक्ति अनुभव साहित्य में ही है वह हृदय के स्वयं प्रचार नहीं है कि उसने

सर्वज्ञान का प्रमाण है और उमर भी मरने
 पूर्ण दुःखों का यह है कि अपनी इस भाँति मानना कि मनुष्य का
 स्वरूप वा उद्देश्य पूर्ण पूर्ण अनुभव किया है और उस भाँति का
 उस उद्योगों पर जाकर प्रवृत्ति किया है नहीं उसी (भक्ति
 भावना) उस भाँति का कि और मनुष्य का कि प्रवृत्ति कर ली
 है जिसका प्रत्यक्षोपरान्त और अनुसार प्रत्यक्ष महत्त्व पठक करता
 है। तुलसीदास की १ पत्रियों जिनमें मामा व रूप में उपरान्त का
 पत्रिका किया गया है, मरना यह समझा जाना। इसमें अनिच्छित
 प्रसन्न कि सोच बीच में ऐसा पत्रियों का सारा कुछ बहुत नही पढ़
 कता पर यदि ऐसी प्रवृत्ति में पत्रियों इसमें रूप में मामा भाँति
 त उसको गणना उसी कान्ति में हागी जिस कान्ति में वृद्ध कि दह
 हैं। ऐसा कहा जा चुका है सभी महान् कृतियों में कि का कइ
 न नही सदेव निहित रहता ही है पर पत्रियों का सारा रूप की भाँति
 में पर वह मानने अनुभूतियों के ऐसे सम्यगीय आवरण में सज्जित रहता
 है जो वास्तव में मन में अपने अनुरूप सर्वज्ञानशाली भी उत्पन्न करने
 का पूरी क्षमता रखता है। इसलिए राजनाति कि प्रवृत्ति का
 विरादों के प्रचार का साधन का यह नही रह सकता। और यदि ऐसा
 उपरान्त किया भाँति जाता है तो इस प्रवृत्ति कि प्रवृत्ति रूप यह रचना
 काय न होकर प्रवृत्ति रह जाता है, जो काय का रहता है—रक्त
 भाँति और प्राण से विहीन।

आचार्य सम्प्रदाय न यदि काय रचना का प्रवृत्ति यह अर्थ
 व्यापार दुःखाला अनिष्ट से रक्त तथा तत्काल जानने की प्राप्ति
 जाय उपरान्त कहा है तो साथ ही वातासामततवापदगुप्त भी नही

० काव्य यद्यपि धर्म पर प्रवृत्ति कि उत्तरावृत्ति ।

मध्य परनिर्वाण कालासमिन्नकोपदेशयुक्ते ॥

है। 'रसात्मिनः' प्यारी स्त्री व समान गूढ़ स्रजन करने से तात्पर्य यह है कि काव्य का स्रजन पराङ्ग रूप में होता है और उसका प्रभाव बहुत गहरा पड़ता है। अर्थात् काव्य की विनोदता अभिप्रेता की गरिमा और भाव प्रत्युत्ता का महिमा है। ऐसी भाव प्रत्युत्ता जो काव्य में वर्णित भावों की सच्ची और तत्काल अनुभूति में पाठक के हृदय में सञ्चित कर सके। और यह भी नहीं है कि इन प्रयोजनों की पूर्ति के हेतु जो भी चाहें काव्य का प्रयोग कर लें। उपर्युक्त प्रयोजनों का अनुसरण करने व उपरान्त ही उन्होंने काव्य कला की विनोदताएँ भी बतलाई हैं। उसमें एक तो काव्य रचना की नैसर्गिक शक्ति या प्रतिभा इत्यादि नास्ति दूसरे लोक शास्त्र की आचार्यवर्ग और विर शिष्टा तथा अम्पाठ भी होगा चाहिए—

शक्तिनिपुणता लोकाशास्त्रज्ञाद्याद्यपेक्षणात् ।

पाठ्यन शिष्याभ्यास इति हेतुमद्बुद्धये ॥

मनोबलमय आत्मिक बलवर्धन का ही अर्थ है यह अनुभव से

का बिना रिगार किए। काव्य के मातृ-लक्ष्मी में हम दूसरे की पाड़ा का अनुभव करते हैं, दूसरे के सुख-दुःख की अनुभूति करते हैं और दूसरे के हरे आनन्द में हृदय में समागम लेते हैं। हमारी व्यक्तिगत मत्ता का लोकमत्ता में लय हो जाता है। यह हृदय का सम्पर्क है जहाँ एक दूसरे के सुख-दुःख का शांत और सामाजिक कष्ट की निश्चिन्ता का उपक्रम नही बल्कि उनका अनुभव किया जाता है। कवय की निश्चिन्ता के साथ उपक्रम रम-मन्त्रि में ही सम्पन्न है। काव्य भाव भूमि पर प्रतिष्ठित है वहाँ नेत्र-सृष्टि के सुख-दुःख का अनुभव ही प्रधान ध्येय माना जाता है।

दूसरे के सुख-दुःख का अनुभव हम करते कैसे हैं? आचार्यों ने इस अनुभूति-प्रकार करने वाली क्रिया का साधारण करण का नाम दिया है। काव्य में जब कवि अपने भाव की व्यञ्जन लोक-स्वरूपित मायताओं के अनुकूल होती है तभी साधारण्यकरण सम्भव होता है। बिना इसके सत्यार्थ का उत्तर ही पूर्ण नहीं होता। यदि काव्य के चित्र ऐसे असामान्य हो जिनका कल्पना पाठक नही कर सकता अथवा उसमें व्यञ्जित भाव हृदय में उठने वाले सामान्य भावों के मेल में न हो तो उनका प्रत्यक्षाकरण और अनुभव नही कर सकता। एसा काव्य लोक का नही, उसका नही वह था ता आगे चलकर दुरुह आध्यात्मिक अनुभवों का सकल या व्याकरोदी-एकात्मिकता के नारक सदृश के रूप में परिणत होता है जिसका आस्थाद उसके कर्ता या उसके मतानुयायी एवं परिमित समुदाय के अन्तर्गत ही कर सकते हैं। इसलिए काव्य के प्रत्यक्ष दत्ता की समग्रता तभी होती है जब उसके भाव लोक-सामान्य अनुभूतियों के मेल में हो। काव्य का कर्ता व्यक्ति चाहे जिस समुदाय सामाजिक स्थिति और विचारों का हो पर उसकी रचना में व्यञ्जित मनाभाव मूलतः सामान्य हो ही है सभी सदृशों के अनुभव करः

योग्य हाते हैं उसका तहज़ान कर लेने में समर्थ होने हैं और सभी को आनंद देते हैं। इस दृष्टि में, यह कहना कि कवि अपने समुदाय विशेष का मनवृत्ति में परिचालित होकर अपने उन मनोभावों की व्यञ्जना काव्य में करता है जो उसके वर्ग के अनुकूल होते हैं, वह सत्य नहीं रहता। हम बराबर देखते आ रहे हैं कि काव्य का क्या चाहे जिस श्रेणी और स्थिति का व्यक्ति हो। पर उसी रचना से का आनंद सभी समुदाय और श्रेणी के लोग लेते हैं। अब तक काव्य उच्च वर्ग के लोगों के बीच ही निर्मित होता रहा है अतएव उसमें उच्च वर्गों का स्वाद निहित है, यह एक घरे में बैठकर धम्मभूमि में विलग होकर विलास और आनंद का साधनमान हो गया है—ऐसा कहते भी कुछ लोग मिल जाते हैं। यह ठीक है कि 'रस' का हमारे यहाँ दुरुपयोग भी हुआ है, कुछ काल तक काव्य राजपरवारों में संकुचित होकर आनंद और विलास की सामग्री भी बन गया था, पर अब तक के संपूर्ण काव्यसाहित्य में श्रेणी विशेष की संकुचित मनवृत्ति और भाव वर्गों की उपस्था बतलाते बिना पर प्रशान का परिचायक है।

हैं यह अवश्य है कि जिस समाज में मनुष्य रहता है उसका प्रभाव उसपर पड़ता है। उसका राजनीतिक विचार और सामाजिक के अनुकूल ही उसकी कृति पर भी कुछ बाहरा औपचारिक स्थूल प्रभाव पड़ते हैं पर उसकी कृति में दमनित मनोभावों में स्वाद को न तो कोई भावना हो रहती है और न उसके स्वरूप में ही किसी इस प्रकार की भावना से निर्मित कोई तात्त्विक अवसर पड़ता है। मानव्यापी आत्मिक काव्योत्पत्ति को सांस्कृतिक भाव (कविभाव) कहना है उक्त साधारण कव्य गुणसम्पन्न कव्य की सामान्य सामान्यता से भिन्न स्पष्टता चाहिए। 'सांस्कृतिक भाव' का तात्पर्य यह है कि कवि (जिस वर्ग का वह भी हो) समुदाय

मन कर लेने की क्षमता रखती है, तब यहाँ बर्ग विशेष को स्वार्थ
नरक मनेवृत्तियों की रचना में क्या लाभ ।

जो मनुष्य यह कहते हैं कि कालिदास सामन्तकालीन वैभव
के शरीरक हैं और इसलिए उनकी कविताएँ सामान्य अनुभूतियों के
मूल में नहीं आती वे भ्रम में पड़े हैं । इतना कहा जा सकता है कि
उनकी समान और उसकी भावनाओं का पूरा प्रतिबिम्ब उनकी रचना
में है । आज न वैसी सुख-समृद्धि का काल है और न वैसी
व्यवस्था । हमारा वर्तमान समान जैसा दुःख में ग्रस्त है । ऐसी
स्था में वैराग्य शृंगार और व्यास की उन भावनाओं में हा श्रेष्ठ
लेकर काव्य-रचनाएँ करना न तो लोक के हित में ही ठीक है और
। वर्तमानकालीन लोकहृदय के सामान्य भावों के साथ वे पूरा मेल
। ला सकती हैं । पर कालिदास ने जो कुछ किया उसके लिए उन्हें
पर नहीं दिया जा सकता और न तो उपर्युक्त धारणाओं से उनका
हृदय ही कम होता है । 'शकुन्तला' की रचना का काल तो विदे
। यों के आक्रमण का काल है । पर इस अमर कृति की रचना करके
क्या महाकवि ने काई अनुरित काय किया ? बात यह है कि कोई
विशिष्ट कवि जहाँ अपने युग का होता है वहाँ युग युग का भी होता
। उसकी अंतर्दृष्टि जहाँ वर्तमान को हृदय में रखती है वहाँ
। रह समय की दूरी पार करके अतीत तक भी पहुँचना है और
। विशेष के उस लोक में भी उसका प्रवेश होता है । यही कारण है कि
। किसी विशेष युग में लिखी गई साहित्य रचना मानव मन का न जाने
। कितने दिनों तक प्रभावित करती रहती है ।